आप्त मीमांसा

अनुक्रमणिका

001) देवों की पूजा आदि से आप महान नहीं हैं
002) विग्रह आदि महोदय से भी आप महान नहीं हैं
003) तीर्थंकरत्व हेतु से भी आप महान नहीं हैं
004) दोषों तथा आवरणों का पूर्णतया अभाव संभव है
005) सर्वज्ञ की व्यवस्था
006) आप ही निर्दोष सर्वज्ञ हैं
007) सर्वथा एकांतवाद प्रमाण से बाधित है
008) एकांत में शुभ-अशुभ आदि नहीं बनते
009) भावैकांत की मान्यता में दोष
010) प्रागभाव-प्रध्वंसाभाव को न मानने में दोष
011) अन्योन्याभाव-अत्यंताभाव को न मानने में दोष
012) अभावैकान्त की मान्यता में दोष
013) एकांतरूप भावाभाव और अवक्तव्य में दोष
014) भाव-अभाव आदि निर्दोष कैसे हैं ?
015) सत् असत् निर्दोष कैसे हैं ?
016) उभय और अवक्तव्य कथन निर्दोष कैसे हैं ?
017) भावधर्म अभाव के साथ रहता है
018) अभाव भाव के साथ रहता है
019) वस्तु भावाभावात्मक है
020) शेष भंग भी नय विवक्षा से बनेंगे
021) वस्तु एक रूप नहीं है
022) प्रत्येक धर्म का अर्थ पृथक् है
023) अन्य धर्मों में भी सप्तभंगी प्रक्रिया करना
024) अद्वैत एकांत में दोष
025) अद्वैत में शुभ-अशुभ आदि द्वैत नहीं बनते
026) अद्वैत में द्वैत आ जाता है
027) अद्वैत के बिना द्वैत कैसे ?
028) पृथक्त्वैकांत नहीं बनता
029) बौद्ध की पृथक्त्व मान्यता में दोष
030) क्या ज्ञान ज्ञेय से सर्वथा भिन्न है
031) बौद्ध के यहाँ वचन किसको कहते हैं ?
032) अद्वैत पृथक्त्व एकान्त में दोष
033) अद्वैत और पृथक्त्व सच्चे भी हैं
034) सभी वस्तुएँ एकत्व और पृथक्त्व रूप केसे हैं ?
035) सत् में ही विवक्षा और अविवक्षा होती है
036) एक वस्तु में भेद और अभेद दोनों केसे होंगे ?
037) वस्तु को सर्वथा नित्य मानने में दोष
038) प्रमाण और कारकों के नित्य होने में विक्रिया केसी ?
039) सर्वथा सत् रूप कार्य उत्पन्न केसे होगा ?
040) नित्य एकांत में पुण्य पापादि भी असंभव हैं
041) क्षणिक एकांत भी असंभव है
042) कार्य सर्वथा असत् से केसे होगा ?
043) क्षणिक एकांत में कार्यकारण भाव असंभव है
044) बौद्ध भिन्न-भिन्न कार्यक्षणों में एकत्व को संवृति से मानता है
045) बौद्ध के यहाँ चतुष्कोटि विकल्प अवक्तव्य है
046) एकांत से अवक्तव्य मान्यता में दोष

047) असत् का निषेध होता है क्या ?
048) अवस्तु ही अवक्तव्य है
049) सभी धर्मों से रहित को कहा नहीं जा सकता
050) आप बौद्ध वस्तु को अवाच्य क्यों मानते हो ?
051) सर्वथा क्षणिक में कृतनाश आदि दोष आते हैं
052) नाश को निर्हेतुक मानने में दोष
053) बौद्ध ने हेतु को विसदृश कार्य के लिए माना है
054) बौद्ध के यहाँ स्कंधादी में उत्पादादि नहीं बनते हैं
055) नित्य क्षणिक का उभय एकांत सदोष है
056) नित्य और क्षणिक स्याद्वाद में निर्दोष हैं
057) उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य की व्यवस्था
058) उत्पाद आदि अभिन्न हैं
059) एक द्रव्य के नाश आदि में भिन्न भाव होते है
060) वस्तु तत्त्व त्रयात्मक है
061) क्या कार्य कारण आदि सर्वथा भिन्न हैं ?
062) वैशेषिक के सर्वथा भिन्नैकांत में दोष
063) वैशेषिक को देश-काल भेद भी मानना चाहिए
064) समवाय से वृत्ति मानने में दोष
065) सामान्य समवाय एक-एक हैं
066) सामान्य समवाय भी परस्पर में भिन्न हैं
067) परमाणु की अन्यरूप परिणति न मानने में दोष
068) कार्य भ्रांत है तो कारण भी भ्रांत है
069) सांख्य के यहाँ कार्यकारणादि में एकत्व ही है
070) सर्वथा भिन्न-अभिन्न की उभय और अवाच्य भी सदोष है
071) कथंचित् कार्य-कारण आदि का भेद-अभेद ठीक है
072)
073) धर्म, धर्मी सर्वथा आपेक्षिक या अनापेक्षिक ही नहीं है
074) आपेक्षिक-अनापेक्षिक का उभय एवं अवाच्य एकांत से नहीं घटता
075) आपेक्षिक-अनापेक्षिक की अनेकांत व्यवस्था
076) सर्वथा हेतु सिद्ध या आगम सिद्ध तत्त्व बाधित है
077) हेतु के और आगम के उभय एवं अवाच्य भी सदोष हैं
078) हेतु और आगम का अनेकांत
079) सर्वथा अंतरंग अर्थ मानना सदोष है
080) ज्ञान मात्र मानने से साध्य-साधन भी नहीं बनेंगे
081) सर्वथा बहिरंग अर्थ ही है ऐसा कहना भी सदोष है
082) अंतरंग और बहिरंग अर्थ का उभय और अवाच्य भी सदोष हैं
083) ज्ञान पदार्थ और बाह्य पदार्थ दोनों ही सिद्ध हैं
084) जीव शब्द बाह्य अर्थ से सहित है
085) संज्ञा रूप हेतु निर्दोष है
086) विज्ञानाद्वैतवादी का समाधान
087) ज्ञान और शब्द की प्रमाणता कैसे है ?
088) क्या भाग्य से ही सभी कार्य सिद्ध हो सकते हैं ?
089) क्या एकांत से पुरुषार्थ से ही कार्य सिद्ध होते हैं ?
090) भाग्य-पुरुषार्थ के उभय एवं अवाच्य का खंडन
091) भाग्य और पुरुषार्थ का अनेकांत
092) क्या पर को सुख-दु:ख देने से ही पुण्य-पाप बंध निश्चित है ?
093) क्या स्वयं में दु:ख-सुख से पुण्य-पाप होता है ?
094) पुण्य-पाप का उभय एवं अवक्तव्य भी एकांत से सदोष है
095) पुन: पुण्य-पाप का बंध कैसे होता है ?
096) क्या अज्ञान से बंध और अल्पज्ञान से मोक्ष होता है ?
097) अज्ञान, अल्पज्ञान से बंध-मोक्ष का उभय और अवक्तव्य नहीं बनता है
098) अज्ञान से बंध एवं अल्पज्ञान से मोक्ष की सुंदर व्यवस्था
099) कर्मबंध के अनुसार संसार विचित्र है

100) शुद्धि-अशुद्धि शक्तियाँ कैसी हैं
101) प्रमाण का लक्षण और भेद
102) प्रमाणों का फल क्या है ?
103) ‘स्यात्’ शब्द का महत्व
104) स्याद्वाद का स्वरूप
105) स्याद्वाद और केवलज्ञान में क्या अंतर है ?
106) नय और हेतु का लक्षण
107) द्रव्य का स्वरूप
108) मिथ्यानय-सम्यकनय का लक्षण
109) वस्तु को विधि आदि के द्वारा कहते है
110) उभयात्मक वस्तु को एक रूप कहना मिथ्या है
111) वचन का वास्तविक स्वभाव क्या है ?
112) स्यात्कार ही अभिप्रेत को प्राप्त कराने वाला है
113) स्याद्वाद की सम्यक् व्यवस्था
114) आप्त मीमांसा करने का उद्देश्य

!! श्रीसर्वज्ञवीतरागाय नम: !!
स्वामी-श्री-समंतभाद्राचार्य-देव-विरचित
श्री
देवागम स्तोत्र
अपरनाम : आप्त मीमांसा
मूल संस्कृत गाथा,
आर्यिका ज्ञानमती कृत हिंदी टीका सहित
!! नम: श्रीसर्वज्ञवीतरागाय !!
ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नम: ॥1॥
अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलकलंका
मुनिभिरूपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥2॥
अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नम: ॥3॥
॥ श्रीपरमगुरुवे नम:, परम्पराचार्यगुरुवे नम: ॥
सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमन: प्रतिबिधकारकं, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्रीआप्त-मीमांसा नामधेयं, अस्य मूलाग्रन्थकर्तार: श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रन्थकर्तार: श्रीगणधरदेवा: प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचनानुसारमासाद्य आचार्य श्रीसमन्तभद्राचार्यदेव विरचितं, श्रोतार: सावधानतया शृणवन्तु ॥
मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥
सर्वमंगलमांगल्यं सर्वकल्याणकारकं
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम् ॥

देवों की पूजा आदि से आप महान नहीं हैं

देवागम - नभोयान - चामरादि - विभूतय:
मायाविष्वपि दृश्यन्ते, नातस्त्वमसि नो महान् ॥1॥
अन्वयार्थ : हे भगवन् ! आपके जन्मोत्सव आदि में [देवागम] देवों का आना, केवलज्ञान होने के बाद [नभोयान] आकाश में गमन और [चामरादिविभूतय:] चमर, छत्र आदि समवसरण की विभूतियाँ ये सब [मायाविष्वपि] मायावी इंद्रजालिया आदि जनों में भी [दृश्यन्ते] देखी जाती हैं [अत:] इस कारण भगवन् ! [त्वं] आप [नो] हमारे लिए [महान्] महान / वंद्य [न असि] नहीं हैं ॥१॥

विग्रह आदि महोदय से भी आप महान नहीं हैं

अध्यात्मं बहिरप्येष, विग्रहादि-महोदय:
दिव्य: सत्यो दिवौकस्स्व-प्यस्ति रागादिमत्सु स: ॥2॥
अन्वयार्थ : [एष अध्यात्मं बहिरपि विग्रहादि महोदय:] यह अंतरंग और बहिरंग शरीर आदि का जो महोदय है [दिव्य: सत्य:] जो कि अमानुषिक और सत्य है [स: रागादि मत्सु दिवौकस्सु अपि अस्ति] वह महोदय राग-द्वेष आदि सहित देवों में भी पाया जाता है । इसलिए भी आप हमारे लिए महान नहीं हो सकते हैं ॥२॥

तीर्थंकरत्व हेतु से भी आप महान नहीं हैं

तीर्थकृत्समयानां च, परस्परविरोधत:
सर्वेषामाप्तता नास्ति, कश्चिदेव भवेद्गुरु: ॥3॥
अन्वयार्थ : [तीर्थकत्समयानां च] सभी तीर्थंकरों के आगमों में [परस्पर विरोधत:] परस्पर में विरोध पाया जाता है अत: [सर्वेषां आप्तता नास्ति] सभी आप्त नहीं हो सकते हैं [कश्चिदेव भवेत् गुरु:] इन सबमें से कोई एक ही महान गुरु हो सकता है ॥३॥

दोषों तथा आवरणों का पूर्णतया अभाव संभव है

दोषावरणयोर्हानि-र्नि:शेषास्त्यतिशायनात्
क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो, बहिरन्तर्मलक्षय: ॥4॥
अन्वयार्थ : [क्वचित्] किसी जीव विशेष में [दोषावरणयोर्हानि: नि:शेषा अस्ति] दोष और आवरणों की हानि पूर्णतया पायी जाती है [अतिशायनात्] क्योंकि अन्य जीवो में दोष और आवरण की तरतमता देखी जाती है [यथा स्वहेतुभ्यो बहिरंत: मलक्षय:] जैसे अपने हेतु आदि से सुवर्ण के किट्ट, कालिमा आदि अंतरंग एवं बहिरंग मल का नाश देखा जाता है ॥४॥

सर्वज्ञ की व्यवस्था

सूक्ष्मांतरितदूरार्था:, प्रत्यक्षा: कस्यचिद्यथा
अनुमेयत्वतोऽग्न्यादिरिति सर्वज्ञसंस्थिति: ॥5॥
अन्वयार्थ : [सूक्ष्मांतरित दूरार्था: कस्यचित् प्रत्यक्षा:] सूक्ष्म, अंतरित और दूरवर्ती पदार्थ किसी के प्रत्यक्ष अवश्य हैं [अनुमेयत्वत:] क्योंकि ये अनुमान ज्ञान के विषय हैं [यथा अग्न्यादि:] जैसे अग्नि आदि पदार्थ अनुमान ज्ञान के विषय हैं अत: किसी के प्रत्यक्ष अवश्य हैं [इति सर्वज्ञसंस्थिति:] इस प्रकार से सर्वज्ञ की सम्यक् प्रकार से स्थिति सुघटित है ॥५॥

आप ही निर्दोष सर्वज्ञ हैं

स त्वमेवासि निर्दोषो, युक्तिशास्त्राऽविरोधिवाक्
अविरोधो यदिष्टं ते, प्रसिद्धेन न बाध्यते ॥6॥
अन्वयार्थ : [स: निर्दोष: त्वमेव असि] हे भगवन् ! वह निर्दोष सर्वज्ञ आप ही हैं [युक्तिशास्त्राऽविरोधिवाक्] आपके वचन तर्क और आगम से विरोध-रहित हैं । [ते यत् इष्टं अविरोध:] और जो यह आपका इष्ट मत है वह अविरोधी है [प्रसिद्धेन न बाध्यते] क्योंकि वह प्रसिद्ध (प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों) से बाधित नहीं होता है ॥६॥

सर्वथा एकांतवाद प्रमाण से बाधित है

त्वन्मतामृतबाह्यानां, सर्वथैकांतवादिनाम्
आप्ताभिमानदग्धानां, स्वेष्टं दृष्टेन बाध्यते ॥7॥
अन्वयार्थ : [सर्वथैकांतवादिनां] वस्तु के एक-एक धर्म को सर्वथारूप से स्वीकार करने वाले एकांतवादी जन [त्वन्मतामृतबाह्यानां] जो कि आपके मतरूपी अमृत से बहिर्भूत हैं [आप्ताभिमानदग्धानां] और जो 'मैं आप्त हूँ' इस प्रकार के अभिमान से दग्ध हैं [स्वेष्टं दृष्टेन बाध्यते] उनका जो अपना इष्ट-मत है, वह प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित है ॥७॥

एकांत में शुभ-अशुभ आदि नहीं बनते

कुशलाऽकुशलं कर्म, परलोकश्च न क्वचित्
एकांत-ग्रह-रक्तेषु, नाथ! स्व-पर-वैरिषु ॥8॥
अन्वयार्थ : [नाथ एकांतग्रहरक्तेषु] हे नाथ ! जो लोग एकांत को ग्रहण में तत्पर हैं । [स्वपरवैरिषु] वे स्व और पर के शत्रु हैं । [क्वचित् कुशलाकुशलं कर्म च परलोक: न] उनके यहाँ पुण्य-पाप कर्म एवं परलोक भी नहीं सिद्ध होगा ।

भावैकांत की मान्यता में दोष

भावैकांते पदार्थाना-मभावानामपन्हवात्

सर्वात्मकमनाद्यन्त-मस्वरूपमतावकम् ॥9॥

अन्वयार्थ : हे भगवन् ! [पदार्थानां भावैकांते अभावानां अपह्नवात्] यदि पदार्थों के अस्तित्व का ही एकांत माना जाये, तब तो अभावों का लोप हो जाता है [अतावकं सर्वात्मकं अनाद्यनंतं अस्वरूपं] पुन: आपसे भिन्न अन्य सभी के यहाँ सभी वस्तु सर्वात्मक, अनादि, अनंत और स्वरूप शून्य हो जावेंगी ।

प्रागभाव-प्रध्वंसाभाव को न मानने में दोष

कार्यद्रव्यमनादि स्यात्, प्रागभावस्य निन्हवे

प्रध्वंसस्य च धर्मस्य, प्रच्यवेऽनतन्तां व्रजेत् ॥10॥

अन्वयार्थ : [प्रागभावस्य निन्हवे कार्यद्रव्यमनादि स्यात्] यदि प्रागभाव को न माना जावे, तब तो सभी कार्य अनादि हो जावेंगे [प्रध्वंसस्य च धर्मस्य, प्रच्यवेऽनतन्तां व्रजेत्] और प्रध्वंस धर्म को नहीं मानने पर सभी वस्तुएं अनंतकाल तक बनी रहेंगी ॥१०॥

अन्योन्याभाव-अत्यंताभाव को न मानने में दोष

सर्वात्मकं तदेकं स्यादन्यापोह-व्यतिक्रमे

अन्यत्र समवाये न, व्यपदिश्येत सर्वथा ॥11॥

अन्वयार्थ : [अन्यापोहव्यतिक्रमे तदेकं सर्वात्मकं स्यात्] यदि अन्यापोह का लोप कर दिया जाये, तो वह अपना-अपना इष्ट एक तत्त्व सब रूप बन जावेगा [अन्यत्र समवाये सर्वथा न व्यपदिश्येत] और यदि अत्यंताभाव का लोप किया जावे, तब तो एक इष्ट तत्त्व का अन्य के तत्त्व में संमिश्रण हो जाने पर सर्वथा अपना इष्ट तत्त्व कहा ही नहीं जा सकेगा

अभावैकान्त की मान्यता में दोष

अभावैकांत-पक्षेऽपि, भावापन्हव-वादिनाम्

बोधवाक्यं प्रमाणं न, केन साधनदूषणम् ॥12॥

अन्वयार्थ : [अभावैकांत पक्षेऽपि भावापन्हववादिनां] यदि एकांत से सभी वस्तु को अभाव रूप ही स्वीकार किया जावे, तब तो भावों का सर्वथा अभाव करने वाले इन वादियों के यहाँ [बोधवाक्यं प्रमाणं न केन साधनदूषणम्] ज्ञान और आगम दोनों का भी अभाव होने से दोनों प्रमाण नहीं रहेंगे । पुन: किसके द्वारा अपने पक्ष का साधन और पर के पक्ष में दूषण दिया जावेगा ॥१२॥

एकांतरूप भावाभाव और अवक्तव्य में दोष

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वाद-न्याय-विद्विषाम्

अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥13॥

अन्वयार्थ : [स्याद्वाद न्यायविद्विषां उभयैकात्म्यं न विरोधात्] स्याद्वाद न्याय के विद्वेषियों के यहाँ भाव और अभाव इन दोनों की एकता रूप मान्यता भी नहीं बनती है, क्योंकि इन भाव और अभाव का आपस में विरोध देखा जाता है । [अवाच्यतैकांतेऽपि अवाच्यं इति उक्ति: न युज्यते] यदि एकांत से वस्तु को 'अवक्तव्य' ही माना जाये, तो 'तत्व अवाच्य है', यह कथन भी नहीं बन सकेगा ।

भाव-अभाव आदि निर्दोष कैसे हैं ?

कथंचित्ते सदेवेष्टं, कथंचिदसदेव तत्

तथोभयमवाच्यं च, नय-योगान्न सर्वथा ॥14॥

अन्वयार्थ : [ते कथंचित् सत् एव इष्टं तत् कथंचित् असदेव] हे भगवन् ! आपके मत में कथंचित् वस्तु 'सत्' रूप ही है एवं वही वस्तु कथंचित् 'असत्' रूप ही है । [तथा उभयं अवाच्यं न नय योगात् न सर्वथा] तथा वही वस्तु कथंचित् उभयरूप है और कथंचित् 'सत्

अवक्तव्य' कथंचित् 'असत् अवक्तव्य' एवं कथंचित् 'सत् असत् अवक्तव्य' भी है, यह सभी व्यवस्था नयों की अपेक्षा से ही मानी गई है, किन्तु सर्वथा ऐसा नहीं है ॥

सत् असत् निर्दोष कैसे हैं ?

सदेव सर्वं को नेच्छेत्स्वरूपादि-चतुष्टयात्

असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यवतिष्ठते ॥15॥

अन्वयार्थ : [स्वरूपादि चतुष्टयात् सर्वं सत् एव विपर्यासात् असत् एव को न इच्छेत्] स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव रूप चतुष्टय की अपेक्षा से सभी वस्तुएँ 'सत्' रूप ही हैं एवं परद्रव्य, परक्षेत्र परकाल की अपेक्षा से सभी वस्तुएँ 'असत्' रूप ही हैं इस प्रकार कौन स्वीकार नहीं करेगा ? [न चेत् न व्यवतिष्ठते] यदि कोई नहीं माने, तो किसी भी वस्तु की व्यवस्था ही नहीं बन सकती है ।

उभय और अवक्तव्य कथन निर्दोष कैसे हैं ?

क्रमार्पित-द्वयाद् द्वैतं, सहावाच्यमशक्तित:

अवक्तव्योत्तरा: शेषास्त्रयो भंगा: स्वहेतुत: ॥16॥

अन्वयार्थ : [क्रमार्पितद्वयात् द्वैतं, सह अशक्तित: अवाच्यं] अस्ति, नास्ति दोनों धर्मों का क्रम से कथन करने से 'अस्ति-नास्ति' रूप तृतीय भेद बनता है एवं पर-चतुष्टय के द्वारा कहे गये अस्ति, नास्ति दोनों धर्मों को एक साथ कह नहीं सकते हैं अत: 'अवक्तव्य' नाम का चौथा भंग होता है । [अवक्तव्योत्तरा: शेषा: त्रयो भंगा स्वहेतुत:] उपर्युक्त आदि के तीन भंगों के उत्तर में अवक्तव्य पद जोड़ देने से बचे हुए तीन भंग अपने-अपने हेतु से कथंचित् रूप से बन जाते हैं ।

भावधर्म अभाव के साथ रहता है

अस्तित्वं प्रतिषेध्येनाऽविनाभाव्येक-धर्मिणि

विशेषणत्वात्साधर्म्यं, यथा भेद-विवक्षया ॥17॥

अन्वयार्थ : [एक धर्मिणि अस्तित्वं प्रतिषेध्येनाऽबिनाभावी] एक धर्मीरूप वस्तु में अस्तित्व धर्म अपने विरोधी नास्तित्व के साथ ही रहता है [विशेषणत्वात् यथा भेद-विवक्षया साधर्म्यं] क्योंकि वह विशेषण है जैसे अन्वय हेतु व्यतिरेक हेतु के साथ अविनाभाव संबंध को लिए हुए रहता है ।

अभाव भाव के साथ रहता है

नास्तित्वं प्रतिषेध्येनाऽविनाभाव्येक धर्मिणि

विशेषणत्वाद्वैधर्म्यं यथाऽभेद-विवक्षया ॥18॥

अन्वयार्थ : [एक धर्मिणि नास्तित्वं प्रतिषेध्येनाऽविनाभावि] एक वस्तु में नास्तित्व धर्म अपने विरोधी अस्तित्व के साथ अविनाभावी है [विशेषणत्वात् यथा अभेद विवक्षया वैधर्म्यं] क्योंकि वह विशेषण है जैसे व्यतिरेक हेतु अन्वय के साथ अविनाभावी है ॥

वस्तु भावाभावात्मक है

विधेयप्रतिषेध्यात्मा, विशेष्य: शब्दगोचर:

साध्यधर्मो यथा हेतुरहेतुश्चाप्यपेक्षया ॥19॥

अन्वयार्थ : [विशेष्य: विधेयप्रतिषेध्यात्मा शब्दगोचर:] जो विशेषण के द्वारा जानने योग्य है वह विशेष्य है, वह विधि और प्रतिषेध करने योग्य ही होता है क्योंकि वह शब्द का विषय है [यथा साध्यधर्म: हेतु अपेक्षया च अहेतु अपि] जैसे साध्य साध्य का जो धर्म एक विवेक्षा से अहेतु रूप भी हो जाता है ॥

शेष भंग भी नय विवक्षा से बनेंगे

शेषभंगाश्च नेतव्या यथोक्त नय-योगत:
न च कश्चिद्विरोधोऽस्ति मुनीन्द्र! तव शासने ॥20॥
अन्वयार्थ : [शेष भंगा: च यथोक्तनययोगत: नेतव्या:] आगे के जो शेष भंग हैं उनको भी यथायोग्य नयों की अपेक्षा से समझ लेना चाहिए [मुनीन्द्र ! तव शासने कश्चित् विरोधो न चास्ति] हे मुनीन्द्र! आपके शासन में कुछ भी विरोध नहीं आता है ॥२०॥

वस्तु एक रूप नहीं है

एवं विधि निषेधाभ्या-मनवस्थितमर्थकृत्
नेति चेन्न यथा कार्यं, बहिरन्तरुपाधिभि: ॥21॥
अन्वयार्थ : [एवं विधिनिषेधाभ्यां अनवस्थितं अर्थकृत] इस प्रकार से विधि और निषेध के द्वारा जो वस्तु अवस्थित रूप से एक रूप नहीं है वही वस्तु अर्थ-क्रियाकारी है [न इति चेत् न यथा बहिरंत: उपाधिभि: कार्यं] यदि ऐसा नहीं माना जाये, तो जैसे बाह्य और अंतरंग इन दोनों कारणों से कार्य माना गया है, वह उस प्रकार से नहीं बन सकेगा ।

प्रत्येक धर्म का अर्थ पृथक् है

धर्मे धर्मेऽन्य एवार्थो धर्मिणोऽनन्तधर्मण:
अङ्गित्वेऽन्यतमान्तस्य, शेषान्तानां तदङ्गता ॥22॥
अन्वयार्थ : [अनंतधर्मण: धर्मिणो धर्मे धर्मे अन्य एव अर्थ:] अनंत धर्म वाली वस्तु के एक-एक धर्म में भिन्न ही अर्थ पाया जाता है [अन्यतमान्तस्य अंगित्वे शेषान्तानां तदङ्गता] उन बहुत धर्मों में से किसी एक धर्म को प्रधान करने पर शेष धर्मों की गौणता हो जाती है ।

अन्य धर्मों में भी सप्तभंगी प्रक्रिया करना

एकाऽनेक-विकल्पादा-वुत्तरत्रापि योजयेत्
प्रक्रियां भंगिनीमेनां नयैर्नय-विशारद: ॥23॥
अन्वयार्थ : [नय विशारद: उत्तरत्र एकाऽनेक-विकल्पादौ अपि] जो नयों में कुशल हैं वे आगे-आगे एक-अनेक आदि भेदों में भी [नयै: एनां भंगिनीं प्रक्रियां योजयेत्] नयों के द्वारा इस सप्तभंगी प्रक्रिया को घटित कर लेवें ।

अद्वैत एकांत में दोष

अद्वैतैकान्तपक्षेऽपि, दृष्टो भेदो विरुध्यते
कारकाणां क्रियायाश्च, नैवंâ स्वस्मात्प्रजायते ॥24॥
अन्वयार्थ : [अद्वैतैकांतपक्षेऽपि कारकाणां क्रियायाश्च दृष्ट: भेद: विरुध्यते] यदि अद्वैत रूप एकांत पक्ष लिया जाये, तो कारक और क्रियाओं का जो भेद दिख रहा है, वह विरुद्ध हो जाता है [एकं स्वस्मात् न जायते] क्योंकि कोई भी अपने से ही आप उत्पन्न नहीं हो सकता है ॥

अद्वैत में शुभ-अशुभ आदि द्वैत नहीं बनते

कर्मद्वैतं फलद्वैतं, लोकद्वैतं च नो भवेत्
विद्याऽविद्याद्वयं न स्याद्बंधमोक्षद्वयं तथा ॥25॥
अन्वयार्थ : [कर्मद्वैतं फलद्वैतं लोकद्वैतं च नो भवेत्] इस अद्वैत सिद्धांत के मानने से शुभ-अशुभ कर्म का युगल, उसके फल-स्वरूप पुण्य-पाप का युगल अथवा सुख-दु:ख का युगल, इहलोक-परलोक का युगल-रूप द्वैत नहीं बन सकता है । [विद्याविद्याद्वयं तथा बंधमोक्षद्वयं न स्यात्] इसी प्रकार विद्या और अविद्या का द्वैत तथा बंध और मोक्ष का द्वैत भी नहीं बन सकता है ।

अद्वैत में द्वैत आ जाता है

हेतोरद्वैतसिद्धिश्चेद्-द्वैतं स्याद्धेतुसाध्ययो:
हेतुना चेद्विना सिद्धि-द्र्वैतं वाङ्मात्रतो न किम् ॥26॥
अन्वयार्थ : [हेतो: अद्वैतसिद्धि: चेत् हेतु साध्ययो: द्वैतं स्यात्] यदि हेतु से अद्वैत की सिद्धि मानों तब तो हेतु और साध्य के मानने पर द्वैत हो जाता है [चेत् हेतुना बिना सिद्धि: वाङ्मात्रत: द्वैतं किं न] यदि हेतु के बिना ही अद्वैत की सिद्धि मानते हो, तब तो वचन मात्र से ही द्वैत की सिद्धि भी क्यों न हो जावे ?

अद्वैत के बिना द्वैत कैसे ?

अद्वैतं न विना द्वैता-दहेतुरिव हेतुना।
संज्ञिन: प्रतिषेधो न, प्रतिषेध्यादृते क्वचित्॥27॥
अन्वयार्थ : [द्वैतात् विना अद्वैतं न हेतुना अहेतु: इव] द्वैत के बिना अद्वैत नहीं हो सकता है जैसे कि हेतु के बिना अहेतु शब्द नहीं बन सकता [प्रतिषेध्यात् ऋते क्वचित् संज्ञिन: प्रतिषेधो न] क्योंकि निषेध करने योग्य वस्तु के बिना किसी भी नाम वाली वस्तु का निषेध नहीं किया जा सकता है।

पृथक्त्वैकांत नहीं बनता

पृथक्त्वैकान्तपक्षेऽपि, पृथक्त्वादपृथक्तु तौ।
पृथक्त्वे न पृथक्त्वं स्यादनेकस्थौ ह्यसौ गुण: ॥28॥
अन्वयार्थ : [पृथक्त्वैकांतपक्षेऽपि पृथक्त्वात् अपृथक्तु तौ] यदि प्रत्येक द्रव्य गुण आदि के पृथक्ता का ही एकांत माना जावे, तो पृथक् गुण से द्रव्यादि के भिन्न होने से वे गुणगुणी अपृथव्â अभिन्न हो जावेंगे [पृथक्त्वे पृथक्त्वं न स्यात् असौ गुण: हि अनेकस्थ:] यदि वे गुण गुणी पृथक् ही हैं, तब तो पृथक् नाम का कोई गुण सिद्ध नहीं होगा, क्योंकि वह एक होते हुए भी अनेकों में स्थित रहने वाला माना गया है। अत: उसके पृथक्त्व रूप में कोई अस्तित्व नहीं बनता है।।

बौद्ध की पृथक्त्व मान्यता में दोष

संतान: समुदायश्च साधर्म्यञ्च निरंकुश:।
प्रेत्यभावश्च तत्सर्वं न स्यादेकत्व-निन्हवे ॥29॥
अन्वयार्थ : [एकत्वनिन्हवे संतान: समुदाय: च साधर्म्यं च प्रेत्यभावश्च निरंकुश:] यदि एकत्व का सर्वथा लोप किया जावे, तो संतान, समुदाय, सदृशता और परलोक गमन जो कि अंकुश रहित-अबाधित सिद्ध हैं [तत्सर्वं न स्यात्] वे सभी घटित नहीं हो सकेंगे ॥

क्या ज्ञान ज्ञेय से सर्वथा भिन्न है

सदात्मना च भिन्नं चेज्ज्ञानं ज्ञेयाद् द्विधाप्यसत्।
ज्ञानाऽभावे कथं ज्ञेयं बहिरन्तश्च ते द्विषाम् ॥30॥
अन्वयार्थ : [चेत् सदात्मना च ज्ञानं ज्ञेयात् भिन्नं द्विधा अपि असत्] यदि सत् रूप से भी ज्ञान ज्ञेय पदार्थों से भिन्न है, तब तो ज्ञान और ज्ञेय दोनों ही असत् हो जावेंगे [ते द्विषां ज्ञानाऽभावे बहिरंतश्च ज्ञेयं कथं] हे भगवन्! आपके विद्वेषी ए कांतवादियों के यहाँ ज्ञान के अभाव में बहिरंग और अंतरंगभूत ज्ञेय पदार्थ केसे सिद्ध हो सकेंगे।

बौद्ध के यहाँ वचन किसको कहते हैं ?

सामान्यार्था गिरोऽन्येषां, विशेषो नाऽभिलप्यते।
सामान्याभावतस्तेषां, मृषैव सकला गिर: ॥31॥
अन्वयार्थ : [अन्येषां गिर: सामान्यार्था: विशेषो न अभिलप्यते] आप बौद्धों के यहाँ वचन सामान्य अर्थ को ही कहते हैं, विशेष अर्थ को नहीं कहते हैं। [सामान्याऽभावत: तेषां सकला गिर: मृषा एव] विशेष के बिना सामान्य का भी अभाव हो जाने से आप बौद्धों के यहाँ सभी

वचन मिथ्या ही ठहरते हैं।

अद्वैत पृथक्त्व एकान्त में दोष

विरोधान्नोभयैकात्म्यं, स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।

अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥32॥

अन्वयार्थ : [स्याद्वादन्यायविद्विषां उभयैकात्म्यं न विरोधात्] स्याद्वाद न्याय के विद्वेषियों के यहाँ अद्वैत और द्वैत का एकात्म्य भी नहीं बन सकेगा, क्योंकि इन दोनों का परस्पर में विरोध पाया जाता है [आवाच्यतैकांते अपि अवाच्यं इति उक्ति: न युज्यते] एकांत से इन दोनों की अवाच्यता स्वीकार करने पर भी 'अवाच्य' यह वचन नहीं बोला जा सकता है। अर्थात् स्याद्वाद को न मानने से ये बाधाएं आती हैं।

अद्वैत और पृथक्त्व सच्चे भी हैं

अनपेक्ष्ये पृथक्त्वैक्ये, ह्यवस्तु द्वय-हेतुत:

तदेवैक्यं पृथक्त्वं च, स्वभेदै: साधनं यथा ॥33॥

अन्वयार्थ : [अनपेक्ष्ये पृथक्त्वैक्ये हि अवस्तु द्वय हेतुत:] ये अद्वैत और पृथक्त्व एक-दूसरे की अपेक्षा न रखने से अवस्तु हैं क्योंकि दो हेतु पाये जाते हैं [तत् एव ऐक्यं पृथक्त्वं च यथा स्वभेदै: साधनं] उसी प्रकार अद्वैत और पृथक्त्व ये दोनों एक-दूसरे की अपेक्षा रखने से वस्तुभूत हैं जैसे कि हेतु अपने अन्वय व्यतिरेक भेदों से वास्तविक होता है

सभी वस्तुएँ एकत्व और पृथक्त्व रूप केसे हैं ?

सत्सामान्यात्तु सर्वैक्यं, पृथग्द्रव्यादिभेदत:

भेदाभेदविवक्षाया-मसाधारण-हेतुवत् ॥34॥

अन्वयार्थ : [सत्सामान्यात् तु सर्वैक्यं द्रव्यादिभेदत: पृथक्] सत् सामान्य की अपेक्षा से सभी वस्तु एकत्व रूप है एवं द्रव्य गुण आदि के भेद से सभी वस्तु भिन्न-भिन्न हैं। भेदाभेदविवक्षायां असाधारण-हेतुवत्] जिस प्रकार असाधारण हेतु अभेद दृष्टि से एक और भेद दृष्टि से अनेक रूप हो जाता है, उसी प्रकार से सभी पदार्थ सत् रूप से अभेद विवक्षा करने पर एक रूप हैं एवं द्रव्य, गुण, पर्यायों के भेद की विवक्षा से भिन्न-भिन्न हैं।

सत् में ही विवक्षा और अविवक्षा होती है

विवक्षा चाविवक्षा च, विशेष्येऽनन्तधर्मिणि

सतो विशेषणस्यात्र नाऽसतस्तैस्तदर्थिभि: ॥35॥

अन्वयार्थ : [अत्र अनंतधर्मिणि विशेष्ये सत: विशेषणस्य विवक्षा च अविवक्षा च] इस अनंतधर्मात्मक विशेष्य-जीवादि पदार्थों में सत् रूप विशेषण की ही विवक्षा और अविवक्षा [असत: न] असत् रूप विशेषण की नहीं की जाती है [तै: तदर्थिभि:] और ये विवक्षा-अविवक्षा उन-उन विशेषण के इच्छुक जनों द्वारा ही की जाती है।।

एक वस्तु में भेद और अभेद दोनों केसे होंगे ?

प्रमाणगोचरौ सन्तौ, भेदाभेदौ न संवृती

तावेकत्राऽविरुद्धौ ते, गुणमुख्यविवक्षया ॥36॥

अन्वयार्थ : [भेदाऽभेदौ प्रमाणगोचरौ सन्तौ न संवृती] ये भेद और प्रमाण के विषय हैं और सत् रूप हैं, संवृति रूप नहीं हैं [ते गुणमुख्यविवक्षया तौ एकत्रअविरुद्धौ] हे भगवन्! आपके मत में गौण और मुख्य की अपेक्षा से ये दोनों एक ही वस्तु में अविरोध रूप से रहते हैं। अर्थात् चार कारिका तक अद्वैत और पृथक्त्व का अनेकांत सिद्ध किया है।

वस्तु को सर्वथा नित्य मानने में दोष

नित्यत्वैकान्तपक्षेऽपि, विक्रिया नोपपद्यते
प्रागेव कारकाभाव:, क्व प्रमाणं क्व तत्फलम् ॥37॥
अन्वयार्थ : [नित्यत्वैकांतपक्षे अपि विक्रिया न उपपद्यते] यदि सर्वथा सभी वस्तुओं को नित्य ही माना जाये, तब तो कुछ भी क्रिया आदि परिवर्तन नहीं होंगे [प्रागेव कारकाभाव: क्व प्रमाणं क्व तत्फलं] क्योंकि नित्य में पहले ही कत्र्ता-कर्मआदि कारकों का अभाव है पुन: प्रमाण कहाँ रहेगा और जब प्रमाण नहीं होगा, तब उसका फल भी कहाँ रहेगा ?

प्रमाण और कारकों के नित्य होने में विक्रिया केसी ?

प्रमाणकारकैव्यर्क्तम, व्यक्तं चेदिन्द्रियार्थवत्
ते च नित्ये विकार्यं किम, साधोस्ते शासनाद्बहि: ॥38॥
अन्वयार्थ : [इन्द्रियार्थवत् प्रमाणकारकै: व्यक्तं व्यक्तं चेत्] जिस प्रकार से इन्द्रियाँ अपने विषय को व्यक्त करती हैं, उसी प्रकार से यदि प्रमाण और कारकों के द्वारा व्यक्त को अभिव्यक्त-प्रकट किया जाता है, तब तो [ते च नित्ये ते साधो: शासनाद्बहि: किम विकार्यं] आपके यहाँ वे प्रमाण और कारक सर्वथा नित्य हैं अत: हे साधो! आपके शासन से बहिर्भूत जनों के यहाँ व्यक्त को प्रकट करने रूप से भी विक्रिया केसे बन सकेगी ?

सर्वथा सत् रूप कार्य उत्पन्न केसे होगा ?

यदि सत्सर्वथा कार्यं पुंवन्नोत्पत्तुमर्हति
परिणाम-प्रक्लृप्तिश्च, नित्यत्वैकान्त-बाधिनी ॥39॥
अन्वयार्थ : [यदि कार्यं सर्वथा सत् पुंवत् उत्पत्तुं न अर्हति] यदि कार्य को सर्वथा विद्यमान रूप ही माना जाये, तो पुरुष के समान उत्पन नहीं हो सकता है [परिणामप्रक्लृप्ति: च नित्यत्वैकांतबाधिनी] क्योंकि जो वस्तु में परिणमनपरिवर्तन की कल्पना है वह सर्वथा नित्यत्व एकांत को बाधित करने वाली है।

नित्य एकांत में पुण्य पापादि भी असंभव हैं

पुण्य-पापक्रिया न स्यात्, प्रेत्यभाव: फलं कुत:
बन्ध-मोक्षौ च तेषां न, येषां त्वं नाऽसि नायक: ॥40॥
अन्वयार्थ : [येषां त्वं नायक: न असि] हे भगवन्! जिनके आप स्वामी नहीं हैं [तेषां पुण्यपापक्रिया न स्यात्] उनके यहाँ पुण्य और पाप क्रियाएँ नहीं हो सकती हैं [प्रेत्यभावं फलं कुत: बंधमोक्षौ च न] पुण्य पाप के फलस्वरूप परलोक गमन भी केसे होगा? पुन: बंध और मोक्ष की व्यवस्था भी नहीं बन सकेगी।

क्षणिक एकांत भी असंभव है

क्षणिकैकान्तपक्षेऽपि, प्रेत्यभावाद्यसंभव:
प्रत्यभिज्ञाद्यभावान्न, कार्यारम्भ: कुत: फलम् ॥41॥
अन्वयार्थ : [क्षणिकैकांत पक्षेऽपि प्रेत्यभावाद्य संभव:] यदि वस्तु को सर्वथा क्षणिक रूप ही माना जाये, तो भी परलोक गमन आदि असंभव ठहरते हैं [प्रत्यभिज्ञाद्यभावात् कार्यारंभ: न फलं कुत:] और प्रत्यभिज्ञान, स्मरण, अनुमान आदि ज्ञानों का अभाव हो जाने से कार्य का आरंभ भी नहीं हो सकेगा पुन: कार्य के अभाव में सुख-दु:खादि फल भी केसे बन सकेगे ?

कार्य सर्वथा असत् से केसे होगा ?

यद्यसत्सर्वथा कार्यं, तन्माजनि ख-पुष्पवत्
मोपादान-नियामोऽभून्माऽऽश्वास: कार्य-जन्मनि ॥42॥
अन्वयार्थ : [यदि सर्वथा कार्यं असत् तत् खपुष्पवत् मा जनि] यदि कार्य को सर्वथा असत् ही माना जावे, तब तो वह कार्य आकाश

पुष्पवत् उत्पन्न मत होवे [उपादाननियामो मा भूत् कार्यजन्मनि आश्वास: मा] असत् के उत्पाद में तो कार्य के उपादान का नियम भी नहीं बन सकता एवं कार्य की उत्पत्ति में कुछ भी विश्वास नहीं रहेगा।

क्षणिक एकांत में कार्यकारण भाव असंभव है

न हेतु-फल-भावादि-रन्यभावादनन्वयात्

सन्तानान्तरवन्नैक:, सन्तानस्तद्वत: पृथक् ॥43॥

अन्वयार्थ : [हेतुफलभावादि: न अन्यभावात् सन्तानान्तरवत् अनन्वयात्] सर्वथा क्षणिक एकांत में कार्य कारण भाव आदि नहीं बन सकते हैं क्योंकि वे परस्पर में भिन्न होते हैं उनमें भिन्न सन्तान के समान अन्वय नहीं पाया जाता है [एक: संतान: तद्वत: पृथक् न] जो एक संतान होता है, वह संतानी से भिन्न नहीं होता है।

बौद्ध भिन्न-भिन्न कार्यक्षणों में एकत्व को संवृति से मानता है

अन्येष्वनन्यशब्दोऽयं, संवृत्तिर्न मृषा कथम्

मुख्यार्थ: संवृत्तिर्न स्याद्, विना मुख्यान्न संवृति: ॥44॥

अन्वयार्थ : [अन्येषु अनन्यशब्द: अयं संवृति: मृषा कथं न] यदि कहा जाये कि भिन्न-भिन्न चित्तक्षणों में जो अभिन्न एक आत्मा कहा जाता है, वह संवृति से कहा जाता है तब यह संवृति काल्पनिक होने से मिथ्या क्यों नहीं है। [मुख्यार्थ: संवृति: न स्यात्] क्योंकि संवृति मुख्य अर्थ को कहने वाली नहीं है [मुख्यात् बिना संवृति: न] और मुख्य अर्थ के बिना संवृति हो नहीं सकती है।

बौद्ध के यहाँ चतुष्कोटि विकल्प अवक्तव्य है

चतुष्कोटेर्विकल्पस्य, सर्वान्तेषूक्त्ययोगत:

तत्त्वाऽन्यत्वमवाच्यं चेत्तयो: संतानतद्वतो: ॥45॥

अन्वयार्थ : [चेत् सर्वान्तेषु चतुष्कोटे: विकल्पस्य उक्त्ययोगत:] यदि यह कहा जाये कि सभी धर्मों में चतुष्कोटि विकल्प के कहने का अभाव है [तयो: संतानतद्वतो: तत्त्वान्यत्वं अवाच्यं] अत: उन संतान और संतान का भी तत्त्वएकत्वधर्म और अन्यत्वधर्म अवाच्य ठहरता है। बौद्ध के कथन का आचार्य आगे की कारिका द्वारा उत्तर दे रहे हैं।

एकांत से अवक्तव्य मान्यता में दोष

अवक्तव्यचतुष्कोटि-विकल्पोऽपि न कथ्यताम्

असर्वान्तमवस्तु स्या-दविशेष्य-विशेषणम् ॥46॥

अन्वयार्थ : [अवक्तव्यचतुष्कोटिविकल्प: अपि न कथ्यताम्] तब तो चार कोटि का विकल्प 'अवक्तव्य' है, यह भी नहीं कहना चाहिए [असर्वांतं अवस्तु अविशेष्यविशेषणं स्यात्] क्योंकि जो वस्तु सभी धर्मों से रहित है वह अवस्तु है और उसमें विशेषण-विशेष्य भाव भी नहीं बन सकता है।

असत् का निषेध होता है क्या ?

द्रव्याद्यन्तरभावेन, निषेध: संज्ञिन: सत:

असद्भेदो न भावस्तु, स्थानं विधि-निषेधयो: ॥47॥

अन्वयार्थ : [संज्ञिन: सत: द्रव्याद्यंतर भावेन निषेध:]जो संज्ञी और सत् है उसी का परद्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से निषेध किया जाता है [असद्भेदो भावस्तु विधिनिषेधयो: स्थानं न] क्योंकि असत् रूप पदार्थ विधि और निषेध का स्थान नहीं हो सकता है।

अवस्तु ही अवक्तव्य है

अवस्त्वनभिलाप्यं स्यात्सर्वान्तै: परिवर्जितम्

वस्त्वेवावस्तुतां याति, प्रक्रियाया विपर्ययात्॥48॥

अन्वयार्थ : [सर्वान्तै: परिवर्जितं अवस्तु अनभिलाप्यं स्यात्] जो सभी धर्मों से रहित है वही अवस्तु है और वही अवक्तव्य है [प्रक्रियाया विपर्ययात् वस्तु एव अवस्तुतां याति] क्योंकि प्रक्रिया के पलट देने से वस्तु ही अवस्तुपने को प्राप्त हो जाती है।

सभी धर्मों से रहित को कहा नहीं जा सकता

सर्वान्ताश्चेदवक्तव्यास्तेषां किम वचनं पुन:

संवृत्तिश्चेन्मृषैवेषा परमार्थ-विपर्ययात् ॥49॥

अन्वयार्थ : [चेत् सर्वांता अवक्तव्या: पुन: तेषां वचनं किम] यदि सभी धर्म अवक्तव्य हैं, तब तो उनका धर्म देशना आदि कथन भी कैसे होगा ? [संवृति: चेत् परमार्थविपर्ययात् एषा मृषा एव] यदि कहो कि अवक्तव्य का कथन संवृति रूप है, तब तो यह संवृति परमार्थ से विपरीत होने से असत्य ही है।

आप बौद्ध वस्तु को अवाच्य क्यों मानते हो ?

अशक्यत्वादवाच्यं किमभावात्किमबोधत:

आद्यन्तोक्ति-द्वयं न स्यातकिम व्याजेनोच्यतां स्फुटम् ॥50॥

अन्वयार्थ : [किम अशक्यत्वात् अवाच्यं अभावात् किम अबोधत:] क्या वस्तु का कहना शक्य न होने से वह अवाच्य है अथवा उसका अभाव है या उसका ज्ञान नहीं है ? [अद्यान्तोक्तिद्वयं न स्यात् व्याजेन किम स्फुटं उच्यताम्] इन तीनों प्रश्नों में से आदि के और अंत के हेतु तो हो नहीं सकते हैं अत: बहानेबाजी से क्या ? स्पष्ट कहिए कि वस्तु का अभाव है।

सर्वथा क्षणिक में कृतनाश आदि दोष आते हैं

हिनस्त्यनभिसंधातृ, न हिनस्त्यभिसंधिमत्

बध्यते तद्द्वयापेतं, चित्तं बद्धं न मुच्यते ॥51॥

अन्वयार्थ : [अनभिसंधातृ हिनस्ति अनभिसंधिमत् न हिनस्ति] क्षणिक एकांत में हिंसा के अभिप्राय से रहित जीव हिंसा करता है और हिंसा के अभिप्राय से सहित आत्मा हिंसा नहीं कर सकती है [तद्द्वयापेक्षं बध्यते बद्धं चित्तं न मुच्यते] अभिप्राय और अनभिप्राय इन दोनों अवस्थाओं से रहित अन्य ही आत्मा बंध को प्राप्त होती है और बंधी हुई आत्मा नहीं छूटती है।

नाश को निर्हेतुक मानने में दोष

अहेतुकत्वान्नाशस्य, हिंसाहेतुर्न हिंसक:

चित्त-सन्तति-नाशश्च, मोक्षो नाष्टांग-हेतुक: ॥52॥

अन्वयार्थ : [नाशस्य अहेतुकत्वात् हिंसाहेतु: हिंसक: न] नाश को अहेतुक मानने से हिंसक हिंसा में हेतु नहीं हो सकता है [चित्तसंततिनाश: मोक्ष: च अष्टांगहेतुक: न] यदि चित्तसंतति के नाशरूप मोक्ष होता है, तब वह मोक्ष अष्टांग हेतुक नहीं बन सकता है।

बौद्ध ने हेतु को विसदृश कार्य के लिए माना है

विरूपकार्यारम्भाय, यदि हेतुसमागम:

आश्रयिभ्यामनन्योऽसा-वविशेषादयुक्तवत् ॥53॥

अन्वयार्थ : [यदि विरूपकार्यारम्भाय हेतु समागम:] यदि विसदृश कार्य को उत्पन्न करने के लिए हेतु का समागम माना जावे [असौ आश्रयिभ्यां अनन्य: अविशेषात् अयुक्तवत्] तो यह हेतु नाश तथा उत्पाद दोनों का कारण होने स अपने इन दोनों आश्रयियों से भिन्न नहीं है, क्योंकि उन नाश, उत्पाद रूप दोनों आश्रयीभूतों में परस्पर में भेद नहीं है। जैसे अपृथक् सिद्ध पदार्थों का कारण अपने आश्रयियों से भिन्न नहीं होता है।

बौद्ध के यहाँ स्कंधादी में उत्पादादि नहीं बनते हैं

स्कन्धा: सन्ततयश्चैव, संवृतित्वादसंस्कृता:
स्थित्युत्पत्तिव्ययास्तेषां, न स्यु: खर-विषाणवत् ॥54॥

अन्वयार्थ : [स्कन्धा: संततयश्चैव असंस्कृता: संवृतित्वात्] बौद्धों के यहाँ संततियाँ अकार्य रूप हैं क्योंकि वे संवृति रूप हैं [तेषां स्थित्युत्पत्तिव्यया: खरविषाणवत् न स्यु:] अत: उनमें उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य नहीं हो सकते हैं जैसे कि गधे के सींग में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य का अभाव है।

नित्य क्षणिक का उभय एकांत सदोष है

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥55॥

अन्वयार्थ : [स्याद्वादन्यायविद्विषां उभयैकात्म्यं न विरोधात्] स्याद्वादन्याय के विद्वेषियों के यहाँ नित्य क्षणिक का उभय एकात्म्य भी असंभव है, क्योंकि परस्पर में विरोध आता है [अवाच्यतैकांते अपि अवाच्यं इति उक्ति: न युज्यते] और इन दोनों का अवाच्य एकांत माना जावे, तो 'तत्त्व अवाच्य है' यह कथन भी युक्त नहीं है।

नित्य और क्षणिक स्याद्वाद में निर्दोष हैं

नित्यं तत्प्रत्यभिज्ञानान्नाकस्मात्तदविच्छिदा
क्षणिकं कालभेदात्ते बुद्ध्यसंचरदोषत:॥56॥

अन्वयार्थ : [ते तत् नित्यं प्रत्यभिज्ञानात् अकस्मात् न तत् अविच्छिदा] हे भगवन्! आपके मत में वह वस्तु नित्य है क्योंकि उसका प्रत्यभिज्ञान पाया जाता है और यह प्रत्यभिज्ञान आकस्मिक नहीं है क्योंकि वह अविच्छिन्न रूप से अनुभव में आता है [क्षणिकं कालभेदात् बुद्ध्यसंचरदोषत:] वही वस्तु क्षणिक भी है क्योंकि काल के भेद से परिणमन पाया जाता है। यदि ऐसा न मानें, तो ज्ञान का संचार नहीं होना यह दोष आ जावेगा।

उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य की व्यवस्था

न सामान्यात्मनोदेति, न व्येति व्यक्तमन्वयात्
व्येत्युदेति विशेषात्ते, सहैकत्रोदयादि सत् ॥57॥

अन्वयार्थ : [ते सामान्यात्मना न उदेति न व्येति व्यक्तं अन्वयात्] हे भगवन्! आपके यहाँ सभी वस्तुएँ सामान्य रूप से न उत्पन्न होती हैं न विनष्ट ही होती हैं क्योंकि प्रगटरूप से अन्वयरूप हैं [विशेषात् व्येति उदेति एकत्र सह उदयादि सत्] और विशेष-पर्याय रूप से वे ही वस्तुएँ नष्ट होती हैं एवं उत्पन्न होती हैं क्योंकि एक ही वस्तु में एक साथ उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य का होना ‘सत्’ कहलाता है।

उत्पाद आदि अभिन्न हैं

कार्योत्पाद: क्षयो हेतोर्नियमाल्लक्षणात्पृथक्
न तौ जात्याद्यवस्थाना-दनपेक्षा: खपुष्पवत्॥58॥

अन्वयार्थ : [हेतो: क्षय: नियमात् कार्योत्पाद: लक्षणात् पृथक्] जो उपादान कारणभूत हेतु का नाश है, वही नियम से कार्य का उत्पाद है एवं लक्षण से दोनों में भिन्नता है [न तौ जात्याद्यवस्थानात् अनपेक्षा: खपुष्पवत्] किन्तु जाति अवस्थान के कारण उत्पाद, व्यय भिन्न नहीं है। परस्पर की अपेक्षा से रहित उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य आकाश पुष्प के समान असत् ही हैं।

एक द्रव्य के नाश आदि में भिन्न भाव होते है

घट-मौलिसुवर्णार्थी, नाशोत्पादस्थितिष्वयम्
शोक-प्रमोद-माध्यस्थ्यं, जनो याति सहेतुकम् ॥59॥

अन्वयार्थ : [अयं जन: घटमौलिसुवर्णार्थी] जो मनुष्य घट, मुकुट या स्वर्ण के इच्छुक हैं वे क्रम से [नाशोत्पादस्थितिषु सहेतुकम् शोकप्रमोदमाध्यस्थ्यं याति] घट के नाश में सकारणक शोक को, मुकुट के उत्पाद में प्रमोद को एवं दोनों अवस्थाओं में सुवर्ण के रहने से सुवर्ण इच्छुक माध्यस्थ भाव को प्राप्त होते हैं।

वस्तु तत्त्व त्रयात्मक है

पयोव्रतो न दध्यत्ति, न पयोत्ति दधिव्रत:
अगोरसव्रतो नोभे, तस्मात्तत्त्वं त्रयात्मकम् ॥60॥

अन्वयार्थ : [पयोव्रतो न दधि अत्ति दधिव्रत: न पय: अत्ति] जिसको दूध पीने का व्रत है वह दही नहीं खाता है, दधि के नियम वाला दूध को नहीं पीता है [अगोरसव्रतो न उभे तस्मात् तत्त्वं त्रयात्मकं] और जिसको गो रस का त्याग है, वह दूध-दही दोनों को नहीं पीता है, इसीलिए वस्तु तत्त्व त्रयात्मक है।

क्या कार्य कारण आदि सर्वथा भिन्न हैं ?

कार्य-कारण-नानात्वं, गुणं-गुण्यन्यतापि च।
सामान्य-तद्वदन्यत्वं, चैकान्तेन यदीष्यते ॥61॥

अन्वयार्थ : [यदि एकांतेन कार्यकारणनानात्वं गुणगुण्यन्यतापि च] यदि आप एकांत से कार्य-कारण में और गुण-गुणी में भेद मानते हैं [सामान्यतद्वदन्यत्वं इष्यते] और सामान्य एवं सामान्यवान् में भी भेद मानते हैं, तब तो क्या दोष आता है उसे अगली कारिका में बताते हैं।

वैशेषिक के सर्वथा भिन्नैकांत में दोष

एकस्याऽनेक-वृत्तिर्न, भागाऽभावाद्बहूनि वा।
भागित्वाद्वाऽस्य नैकत्वं, दोषो वृत्तेरनार्हते ॥62॥

अन्वयार्थ : [एकस्य अनेकवृत्ति: न भागाऽभावाद् बहूनि वा] सर्वथा कार्यकारण आदि में भेद मानने पर तो एक की अनेकों में वृत्ति नहीं हो सकेगी, क्योंकि उस एक में विभाग के अभाव से निरंशता है अथवा अनेकों में रहना मानों, तो वह एक बहुत हो जावेंगे [भागित्वात् वा अस्य एकत्वं न अनार्हते वृत्ते: दोष:] अथवा यदि उस एक को भागित्व रूप मानकर वृत्ति मानों तो उसका एकत्व नहीं बन सकता है। इस प्रकार से अर्हंत मत से भिन्न सर्वथा एकांत में एक की अनेक में वृत्ति मानने से अनेकों दोष आ जाते हैं।

वैशेषिक को देश-काल भेद भी मानना चाहिए

देश-काल-विशेषेऽपि, स्याद्वृत्तिर्युत-सिद्धवत्।
समान-देशता न स्यान्मूर्तकारण-कार्ययो: ॥63॥

अन्वयार्थ : [देशकालविशेषे अपि युतसिद्धवत् वृत्ति: स्यात्] यदि अवयव अवयवी का परस्पर में सर्वथा भेद माना जाये, तो देश और काल की अपेक्षा से भी भेद मानना पड़ेगा, तब युतसिद्धवत् पृथक्-पृथक् आश्रय में रहने वाले घट- घट के समान इनमें भी वृत्ति माननी होगी। [मूर्तकारणकार्ययो: समानदेशता न स्यात्]पुन: मूर्तिक कारण और कार्य में जो समान देशता देखी जाती है, वह नहीं हो सकेगी।

समवाय से वृत्ति मानने में दोष

आश्रयाश्रयिभावान्न स्वातन्त्र्यं समवायिनाम्।
इत्ययुक्त: स संबन्धो न युक्त: समवायिभि: ॥64॥

अन्वयार्थ : [समवायिनां आश्रयाश्रयिभावात् स्वातंत्र्यं न] यदि कहा जाये कि समवायी अवयव-अवयवी आदि में आश्रय-आश्रयी भाव होने के कारण स्वतंत्रता नहीं है [इति समवायिभि: अयुक्त: स संबंध: न युक्त:] तब तो समवायियों के साथ अयुक्त-दूसरे समवाय संबंध से असंबंधित वह समवाय संबंध घटता ही नहीं है। अर्थात् जो स्वयं असंबद्ध है, वह एक का दूसरे के साथ संबंध कैसे करा सकता है ?

सामान्य समवाय एक-एक हैं

सामान्यं समवायश्चाप्येवैकैकत्र समाप्तित:।

अन्तरेणाश्रयं न स्यान्नाशोत्पादिषु को विधि: ॥65॥

अन्वयार्थ : [सामान्यं समवायश्च अपि आश्रयं अन्तरेण न स्यात् एकैकत्र समाप्तित:] ये सामान्य और समवाय दोनो भी आश्रय के बिना नहीं रह सकते हैं क्योंकि ये दोनों एक-एक ही हैं अत: एक-एक द्रव्य आदि में ही समाप्त हो जाते हैं [नाशोत्पादिषु क: विधि:] तब नाश हुए और उत्पन्न हुए अनित्य कार्यों में उन सामान्य और समवाय की व्यवस्था कैसे बनेगी ?

सामान्य समवाय भी परस्पर में भिन्न हैं

सर्वथानभिसंबंध: सामान्यसमवाययो:।

ताभ्यामर्थो न संबद्धस्तानि त्रीणि खपुष्पवत् ॥66॥

अन्वयार्थ : [सामान्यसमवाययो: सर्वथा अनभिसंबंध:] सामान्य और समवाय का सर्वथा ही परस्पर में कोई संबंध नहीं है [ताभ्यां अर्थो न संबद्ध: तानि त्रीणि खपुष्पवत्] तब उन दोनों के साथ द्रव्य गुण आदि अर्थ भी संबंधित नहीं है पुन: सामान्य समवाय और पदार्थ ये तीनों ही आकाशपुष्पवत् असत् ठहरते हैं।

परमाणु की अन्यरूप परिणति न मानने में दोष

अनन्यतैकान्तेऽणूनां संघातेऽपि विभागवत्।

असंहतत्वं स्याद्भूतचतुष्कं भ्रान्तिरेव सा ॥67॥

अन्वयार्थ : [अणूनां अनन्यतैकांते विभागवत् संघाते अपि असंहतत्त्वं स्यात्] यदि परमाणुओं को एकांत रूप से अनन्य-एकरूप ही माना जावे अर्थात् परमाणुओं का कभी भी भिन्न-भिन्नरूप परिणमन न माना जाये, तब तो परमाणुओं का संघात होने पर भी स्कन्धरूप होना नहीं बन सकेगा जैसे कि परमाणुओं के विभाग में स्कन्ध होना नहीं बनता है [सा भूतचतुष्कभ्रांति: एव] पुन: जो भूत चतुष्क हैं वे भ्रांति रूप ही रहेंगे।

कार्य भ्रांत है तो कारण भी भ्रांत है

कार्यभ्रान्तेरणु-भ्रान्ति: कार्यलिंगं हि कारणम्।

उभयाऽभावतस्तत्स्थं, गुणजातीतरच्च न ॥68॥

अन्वयार्थ : [कार्य भ्रांते: अणुभ्रांति: कारणं कार्यलिंगं हि] यदि स्कंधरूप भूतचतुष्टय को भ्रांत कहोगे, तो उसके कारणभूत परमाणु भी भ्रांत ही मानें जावेंगे, क्योंकि कारण कार्य हेतुक ही होता है [उभयभावत: तत्स्थं गुणजातीरत् च न] पुन: कार्यकारण दोनों ही भ्रांत होने से दोनों का अभाव हो जावेगा और तब उनमें रहने वाले गुण जाति क्रियादि भी नहीं बन सकेंगे।

सांख्य के यहाँ कार्यकारणादि में एकत्व ही है

एकत्वेऽन्यतराभाव:, शेषाऽभावोऽविनाभुव:।

द्वित्वसंख्याविरोधश्च, संवृत्तिश्चेन्मृषैव सा ॥69॥

अन्वयार्थ : [एकत्वे अन्यतराभाव: शेषाभावो अविनाभुव:] यदि सांख्य मतानुसार कार्य-कारण आदि में सर्वथा एकत्व ही माना जाये तो एक की मान्यता में दो में से किसी एक का अभाव ही ठहरेगा पुन: जो एक बचा है उसका भी अभाव हो जावेगा, क्योंकि वह पहले के साथ अविनाभावी था (द्वित्वसंख्याविरोधश्च संवृति: चेत् सा मृषा एव) पुन: द्वित्व आदि संख्या का भी विरोध हो जावेगा। यदि कहो कि द्वित्व आदि संख्याएँ संवृति रूप हैं तब तो यह संवृति तो असत्य ही है।

सर्वथा भिन्न-अभिन्न की उभय और अवाच्य भी सदोष है

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।

अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥70॥

अन्वयार्थ : [स्याद्वादन्यायविद्विषां उभयैकात्म्यं न विरोधात्] स्याद्वाद न्याय के विद्वेषी लोगों के यहाँ कार्य-कारण आदि की भिन्नता और अभिन्नता इन दोनों का एकात्म्य माना जाये, तो भी नहीं बनता है क्योंकि इन भिन्न-अभिन्न का परस्पर में विरोध है [अवाच्यतैकांते अपि अवाच्यं इति उक्ति: न युज्यते] यदि सर्वथा दोनों को अवाच्यरूप स्वीकार किया जावे, तो कार्य-कारण का भेद-अभेद अवाच्य है, यह कथन भी नहीं बन सकेगा।

कथंचित् कार्य-कारण आदि का भेद-अभेद ठीक है

द्रव्यपर्यायियोरैक्यं, तयोरव्यतिरेकत:।

परिणामविशेषाच्च, शक्तिमच्छक्तिभावत: ॥71॥

अन्वयार्थ :

संज्ञासंख्या-विशेषाच्च, स्वलक्षणविशेषत:।

प्रयोजनादिभेदाच्च, तन्नानात्वं न सर्वथा ॥72॥

अन्वयार्थ : [द्रव्यपर्यययो: ऐक्यं तयो: अव्यतिरेकत:] द्रव्य और पर्यायों में कथंचित् अभिन्नता है क्योंकि उन दोनों को पृथक् नहीं कर सकते हैं [तन्नात्वं परिणामविशेषात् च शक्तिमत् शक्तिभावत:] कथंचित् द्रव्य और पर्यायों में भिन्नता भी है क्योंकि उनमें परिणमन भेद पाया जाता है और शक्तिमान् एवं शक्तिभाव से भी भेद है। [संज्ञासंख्याविशेषात् च स्वलक्षणविशेषत: प्रयोजनादिभेदात् च] द्रव्य पर्याय में कथंचित् नाम, संख्या आदि भेद से भी भेद हैं। अपने-अपने लक्षण भेद से भी भेद है एवं प्रयोजन, काल, प्रतिभास आदि से भी भेद है [सर्वथा न] किन्तु द्रव्य पर्यायों में सर्वथा भेद नहीं है।

धर्म, धर्मी सर्वथा आपेक्षिक या अनापेक्षिक ही नहीं है

यद्यापेक्षिकसिद्धि: स्यान्न द्वयं व्यवतिष्ठते।

अनापेक्षिकसिद्धौ च, न सामान्यविशेषता ॥73॥

अन्वयार्थ : [यदि आपेक्षिकसिद्धि: स्यात् न द्वयं व्यवतिष्ठते] यदि सर्वथा धर्म-धर्मी की परस्पर में अपेक्षाकृत ही सिद्धि मानी जावे, तो दोनों ही सिद्ध नहीं हो सकेंगे [अनापेक्षिकसिद्धौ च सामान्यविशेषता न] यदि सर्वथा धर्म-धर्मी में एक-दूसरे की अपेक्षा न करके ही सिद्धि मानी जावे, तो भी सामान्य और विशेष भाव नहीं बन सकेंगे।

आपेक्षिक-अनापेक्षिक का उभय एवं अवाच्य एकांत से नहीं घटता

विरोधान्नोभयैकात्म्यं, स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।

अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥74॥

अन्वयार्थ : [स्याद्वादन्यायविद्विषां उभयैकात्म्यं न विरोधात्] स्याद्वाद न्याय के बैरियों के आपेक्षिक-अनापेक्षिक इन दोनों का एकात्म्य भी नहीं बन सकता है क्योंकि दोनों में परस्पर में विरोध है [अवाच्यतैकांते अपि अवाच्यं इति उक्ति: न युज्यते] और यदि इन दोनों का अवाच्य एकांत ही स्वीकार किया जावे, तो भी नहीं बन सकता है क्योंकि 'अवाच्य' है यह कथन भी शक्य नहीं हो सकेगा।

आपेक्षिक-अनापेक्षिक की अनेकांत व्यवस्था

धर्मधर्म्यविनाभाव: सिद्धयत्यन्योऽन्यवीक्षया।

न स्वरूपं स्वतो ह्येतत्, कारकज्ञापकाङ्गवत् ॥75॥

अन्वयार्थ : [धर्म-धर्म्यविनाभाव: अन्योन्यवीक्षया सिद्धयति] धर्म और धर्मी में अविनाभाव है वह परस्पर में एक-दूसरे की अपेक्षा से ही सिद्ध होता है [न स्वरूपं, स्वतो हि एतत् कारकज्ञापकाङ्गवत्] किन्तु इन धर्म-धर्मी का स्वरूप परस्पर में एक-दूसरे की अपेक्षा कृत् नहीं है वह स्वरूप तो स्वत: ही सिद्ध है जैसे कि कारक के कत्र्ता-कर्म आदि अवयव एवं ज्ञापक के बोध्य-बोधक आदि अवयव स्वत: सिद्ध हैं।

सर्वथा हेतु सिद्ध या आगम सिद्ध तत्त्व बाधित है

सिद्धं चेद्धेतुत: सर्वं न प्रत्यक्षादितो गति:
सिद्धं चेदागमात्सर्वं विरुद्धार्थमतान्यपि ॥76॥

अन्वयार्थ : [हेतुत: सर्वं सिद्धं चेत् प्रत्यक्षादित: गति: न] यदि सभी तत्त्व हेतु से सिद्ध हैं तब तो प्रत्यक्षादि प्रमाण से किसी वस्तु का ज्ञान नहीं हो सकेगा [आगमात् सर्वं सिद्धं चेत् विरुद्धार्थमतानि अपि] यदि आगम से सभी तत्त्व सिद्ध माने जावेंगे, तब तो विरुद्ध अर्थ को कहने वाले आगम भी प्रमाण हो जावेंगे।

हेतु के और आगम के उभय एवं अवाच्य भी सदोष हैं

विरोधान्नोभयैकात्म्यं, स्याद्वादन्यायविद्विषाम्
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥77॥

अन्वयार्थ : [स्याद्वादन्यायविद्विषां उभयैकात्म्यं न] स्याद्वाद न्याय के विद्वेषियों के यहाँ हेतु और आगम के उभय का एकात्म्य भी नहीं हो सकता है [अवाच्यतैकांते अपि अवाच्यं इति उक्ति: न युज्यते] यदि इन उभय तत्त्व को सर्वथा अवाच्य कहा जाये, तो 'अवाच्य' यह कथन भी नहीं किया जा सकता है।

हेतु और आगम का अनेकांत

वक्तर्यनाप्ते यद्धेतो: साध्यं तद्धेतुसाधितम्
आप्ते वक्तरि तद्वाक्यात्साध्यमागमसाधितम् ॥78॥

अन्वयार्थ : [अनाप्ते वक्तरि हेतो: यत् साध्यं तत् हेतु साधितम्] यदि वक्ता आप्त नहीं है तब हेतु से जो साध्य है वह हेतु साधित कहलाता है [आप्ते वक्तरि तत् वाक्यात् साध्यं आगमसाधितं] यदि वक्ता आप्त है तब उनके वचनों से जो तत्त्व सिद्ध होते हैं वे आगम साधित कहलाते हैं।

सर्वथा अंतरंग अर्थ मानना सदोष है

अन्तरङ्गार्थतैकान्ते बुद्धिवाक्यं मृषाऽखिलम्
प्रमाणाभासमेवातस्तत् प्रमाणादृते कथम् ॥79॥

अन्वयार्थ : [अंतरङ्गार्थतैकांते अखिलं बुद्धिवाक्यं मृषा] यदि एकांत से अंतरंग अर्थरूप ज्ञान तत्त्व को ही माना जाये, तब तो सम्पूर्ण बुद्धिरूप अनुमान और वाक्य् ारूप आगम मिथ्या हो जावेंगे [अत: प्रमाणाभासं एव तत् प्रमाणात् ऋते कथं] इसी सेवे प्रमाणाभास हो जावेंगे पुन: प्रमाणाभास भी प्रमाण के बिना कैसे संभव है ?

ज्ञान मात्र मानने से साध्य-साधन भी नहीं बनेंगे

साध्यसाधनविज्ञप्तेर्यदि विज्ञप्तिमात्रता
न साध्यं न च हेतुश्च, प्रतिज्ञाहेतुदोषत: ॥80॥

अन्वयार्थ : [यदि साध्यसाधनविज्ञप्ते: विज्ञप्तिमात्रता] यदि साध्य और साधन के ज्ञान को ज्ञानमात्र ही माना जाये, तब तो [न साध्यं न च हेतु: च प्रतिज्ञाहेतुदोषत:] साध्य और हेतु ये दोनों नहीं बनते हैं एवं द्वितीय चकार से दृष्टांत भी नहीं बनता है, क्योंकि ऐसा कहने में प्रतिज्ञा दोष और हेतु दोष उपस्थित होता है।

सर्वथा बहिरंग अर्थ ही है ऐसा कहना भी सदोष है

बहिरङ्गार्थतैकान्ते प्रमाणाभासनिन्हवात्
सर्वेषां कार्यसिद्धि:स्याद्विरुद्धार्थाऽभिधायिनाम् ॥81॥

अन्वयार्थ : [बहिरङ्गार्थतैकांते प्रमाणाभासनिन्हवात्] यदि एकांत से बाह्य पदार्थ ही माने जावें, अंतरंग ज्ञान तत्त्व न माना जावे, तब तो

इससे प्रमाणाभास का लोप हो जावेगा [विरुद्धार्थाभिधायिनां सर्वेषां कार्यसिद्धि: स्यात्] तब तो विरुद्ध अर्थ को कहने वाले सभी जनों के सभी कार्य सिद्ध हो जावेंगे।

अंतरंग और बहिरंग अर्थ का उभय और अवाच्य भी सदोष हैं

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्

अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥82॥

अन्वयार्थ : [स्याद्वादन्यायविद्विषां उभयैकात्म्यं न विरोधात्] स्याद्वाद न्याय के विद्वेषियों के यहाँ ज्ञान तत्त्व और बाह्य तत्त्व इन उभय का एकात्म्य भी नहीं हो सकता है क्योंकि इनका परस्पर में विरोध है [अवाच्यतैकांते अपि अवाच्यं इति उक्ति: न युज्यते] यदि इन दोनों का सर्वथा अवाच्य स्वीकार किया जावे, तब तो 'अवाच्य' यह कथन भी नहीं हो सकेगा।

ज्ञान पदार्थ और बाह्य पदार्थ दोनों ही सिद्ध हैं

भावप्रमेयापेक्षायां प्रमाणाभासनिन्हव:

बहि:प्रमेयापेक्षायां प्रमाणं तन्निभं च ते ॥83॥

अन्वयार्थ : [ते भावप्रमेयापेक्षायां प्रमाणाभासनिन्हव:] हे भगवन्! आपके मत में अंत: प्रमेय की अपेक्षा करने पर प्रमाणाभास का लोप हो जाता है [बहि: प्रमेयापेक्षायां प्रमाणं तन्निभं च] बाह्य पदार्थों के प्रमेय की अपेक्षा करने पर प्रमाण और प्रमाणाभास दोनों ही होते हैं।

जीव शब्द बाह्य अर्थ से सहित है

जीवशब्द: सबाह्यार्थ: संज्ञात्वाद्धेतुशब्दवत्

मायादिभ्रान्तिसंज्ञाश्च, मायाद्यै: स्वै: प्रमोक्तिवत् ॥84॥

अन्वयार्थ : [जीवशब्द: सबाह्यार्थ: संज्ञात्वात् हेतुशब्दवत्] 'जीव' यह शब्द अपने बाह्य अर्थ से युक्त है क्योंकि संज्ञा या नाम वाला है जैसे हेतु शब्द बाह्य अर्थ के बिना नहीं होता है [मायादिभ्रांति संज्ञाश्च स्वै: मायाद्यै: प्रमोक्तिवत्] माया आदि भ्रांत अर्थवाचक शब्द भी अपने-अपने माया आदि भ्रांत अर्थ को लिए हुए ही होते हैं जैसे कि प्रमाण शब्द अपने अर्थ को लिए हुए होता है।

संज्ञा रूप हेतु निर्दोष है

बुद्धिशब्दार्थसंज्ञास्तास्तिस्रो बुद्ध ्यादिवाचिका:

तुल्या बुद्ध्यादिबोधाश्च, त्रयस्तत्प्रतिबिम्बका: ॥85॥

अन्वयार्थ : [बुद्धिशब्दार्थसंज्ञा: ता: तिस्र: बुद्ध्यादिवाचका:] बुद्धि, शब्द और अर्थ ये तीनों नाम अपने से भिन्न बुद्धि, शब्द एवं अर्थ रूप अपने वाच्य अर्थ को कहते हैं [बुद्ध्यादिबोधा: च तुल्या: त्रय: तत्प्रतिबिम्बका:] तथा जो बुद्धि शब्द और अर्थरूप तीनों के ज्ञान हैं वे तुल्य हैं एवं ये तीनों ही बुद्ध्यादि विषय के प्रतिबिम्बक हैं।

विज्ञानाद्वैतवादी का समाधान

वक्तृश्रोतृप्रमात्ृणां बोधवाक्यप्रमा: पृथक

भ्रान्तावेव प्रमाभ्रान्तौ बाह्याऽर्थौ तादृशेतरौ ॥86॥

अन्वयार्थ : [वक्त्रंश्रोतृप्रमात्ृणां बोधवाक्यप्रमा: पृथक्] वक्ता श्रोता और प्रमाता इन तीनों के ज्ञान, वाक्य और प्रमा पृथक्-पृथक् हैं [भ्रांतै एव प्रमाभ्रांतौ बाह्यार्थौ तादृशेतरौ] यदि इनको भ्रांतरूप माना जावे, तो ज्ञान भी भ्रांतरूप हो जावेगा। प्रमाण और अप्रमाण एवं इष्ट अनिष्ट पदार्थ भी भ्रांत स्वरूप ही हो जावेंगे।

ज्ञान और शब्द की प्रमाणता कैसे है ?

बुद्धिशब्दप्रमाणत्वं, बाह्यार्थे सति नाऽसति

सत्यानृतव्यवस्थैवं, युज्यतेऽर्थाप्त्यनाप्तिषु ॥87॥

अन्वयार्थ : [बाह्यार्थे सति बुद्धि शब्दप्रमाणत्वं असति न] बाह्य पदार्थ के होने पर ही ज्ञान और शब्द में प्रमाणता आती है और बाह्य अर्थ के नहीं होने पर नहीं आती है [एवं अर्थाप्त्यनाप्तिषु सत्यानृतव्यवस्था युज्यते] इसी प्रकार सेबाह्य पदार्थ की प्राप्ति में सत्य की व्यवस्था एवं प्राप्ति न होने में असत्य की व्यवस्था बनती है।

क्या भाग्य से ही सभी कार्य सिद्ध हो सकते हैं ?

दैवादेवार्थसिद्धिश्चेद्दैवं पौरुषत: कथम्

दैवतश्चेदनिर्मोक्ष: पौरुषं निष्फलं भवेत् ॥88॥

अन्वयार्थ : [चेत् दैवात् एव अर्थसिद्धि: पौरुषत: दैवं कथं] यदि एकांत से भाग्य से ही सभी कार्यों की सिद्धि हो जाती है तब पुरुष के व्यापाररूप पुरुषार्थ द्वारा भाग्य का निर्माण कैसे होता है ? [दैवत: चेत् अनिर्मोक्ष: पौरुषं निष्फलंभवेत्] यदि पूर्व के भाग्य से भाग्य बनता है, तब तो कभी भी किसी को मोक्षनहीं हो सकेगी क्योंकि पूर्व-पूर्व के भाग्य से भाग्य का निर्माण होता ही रहेगा और मोक्ष का अभाव मानने से तो पुरुषार्थ निष्फल ही हो जावेगा।

क्या एकांत से पुरुषार्थ से ही कार्य सिद्ध होते हैं ?

पौरुषादेव सिद्धिश्चेत् पौरुषं दैवत: कथम्?

पौरुषाच्चेदमोघं स्यात्, सर्वप्राणिषु पौरुषम् ॥89॥

अन्वयार्थ : [चेत् पौरुषात् एव सिद्धि: दैवत: पौरुषं कथं] यदि पुरुषार्थ से ही सम्पूर्ण कार्यों की सिद्धि मानी जाये, तो भाग्य से पुरुषार्थ कैसे माना जावेगा? [पौरुषात् चेत् अमोघं स्यात् सर्वप्राणिषु पौरुषं] यदि कहो कि पुरुषार्थ से ही पुरुषार्थ बनता है तब तो सभी के कार्य सिद्ध हो जावेंगे, क्योंकि पुरुषार्थ तो सभी प्राणियों में पाया जाता है।

भाग्य-पुरुषार्थ के उभय एवं अवाच्य का खंडन

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्

अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥90॥

अन्वयार्थ : [स्याद्वादन्यायविद्विषां उभयैकात्म्यं न विरोधात्] स्याद्वाद न्याय के विद्वेषियों के यहाँ भाग्य और पुरुषार्थ इन दोनों का एकात्म्य भी संभव नहीं है क्योंकि दोनों का परस्पर में विरोध है [अवाच्यतैकांते अपि अवाच्यं इति उक्ति: ना युज्यते] यदि अवाच्यता का एकांत माना जाता है तो 'ये दोनों तत्त्व अवाच्य हैं'' ऐसा कहना भी असंभव हो जाता है।

भाग्य और पुरुषार्थ का अनेकांत

अबुद्धिपूर्वाऽपेक्षाया-मिष्टानिष्टं स्वदैवत:

बुद्धिपूर्वव्यपेक्षायामिष्टानिष्टं स्वपौरुषात् ॥91॥

अन्वयार्थ : [अबुद्धिपूर्वापेक्षायां इष्टानिष्टं स्वदैवत:] बुद्धि व्यापार की अपेक्षा रखे बिना अनायास ही जो इष्ट-अनिष्ट कार्य सिद्ध हो जाते हैं वे अपने-अपने भाग्य से सिद्ध होते हैं। [बुद्धिपूर्वव्यपेक्षायां इष्टानिष्टं स्वपौरुषात्] एवं बुद्धिपूर्वक की अपेक्षा करके जो इष्ट-अनिष्ट कार्य सिद्ध होते हैं वे पुरुषार्थकृत हैं।

क्या पर को सुख-दु:ख देने से ही पुण्य-पाप बंध निश्चित है ?

पापं धुरवं परे दु:खात् पुण्यं च सुखतो यदि

अचेतनाऽकषायौ च, बध्येयातां निमित्तत: ॥92॥

अन्वयार्थ : [यदि परे दु:खात् पापं ध्रुवं सुखत: च पुण्यं] यदि पर को दु:ख देने से निश्चित ही पाप का बंध होता है और पर को सुख देने से पुण्य बंध होताहै [अचेतनाकषायौ च निमित्तत: बध्येयातां] तब तो अचेतन और कषाय रहित भी निमित्त से बंध जावेंगे।

क्या स्वयं में दु:ख-सुख से पुण्य-पाप होता है ?

पुण्यं ध्रुवं स्वतो दु:खात् पापं च सुखतो यदि
वीतरागो मुनिर्विद्वांस्ताभ्यां युञ्ज्यान्निमित्तत: ॥93॥

अन्वयार्थ : [यदि स्वत: दु:खात् ध्रुवं पुण्यं सुखत: च पापं] यदि स्वयं में दु:ख उत्पन्न करने से निश्चित ही पुण्य का बंध एवं स्वयं को सुख देने से पाप का बंध होता है तब तो [वीतरागो विद्वान् मुनि: निमित्तत: ताभ्यां युंज्यात्] कषाय रहित वीतराग मुनि और विद्वान् मुनिजन भी पुण्य-पाप का बंध करने लगेंगे क्योंकि ये भी अपने सुख-दु:ख की उत्पत्ति में निमित्त कारण होते हैं।

पुण्य-पाप का उभय एवं अवक्तव्य भी एकांत से सदोष है

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥94॥

अन्वयार्थ : [स्याद्वादन्यायविद्विषां उभयैकात्म्यं न विरोधात्] स्याद्वाद न्याय के विद्वेषियों के यहाँ इन पुण्य-पापरूप दोनों सिद्धांतों का एकात्म्य भी नहीं है क्योंकि परस्पर में विरोध आता है [अवाच्यतैकांते अपि अवाच्यं इति उक्ति: न युज्यते] यदि दोनों को अवाच्य ही एकांत से कहा जाये, तो यह पुण्य-पाप बंध अवाच्य है यह कथन भी अशक्य हो जावेगा।

पुन: पुण्य-पाप का बंध कैसे होता है ?

विशुद्धिसंक्लेशाङ्गं चेत् स्वपरस्थं सुखाऽसुखम्
पुण्यपापास्रवौ युक्तौ न चेद्व्यर्थस्तवाऽर्हत: ॥95॥

अन्वयार्थ : [चेत् स्वपरस्थं सुखासुखं विशुद्धिसंक्लेशांङ्गं] यदि स्वपर को होने वाला सुख और दु:ख विशुद्धि और संक्लेश के कारण है [पुण्यपापास्रवौ युक्तौ न चेत् तव अर्हत: व्यर्थ:] तब तो उनसे पुण्य और पाप का आस्रव होना युक्त है। यदि वे सुख-दु:ख विशुद्धि और संक्लेश के कारण नहीं है तब तो अर्हन् भगवन्! वे व्यर्थ ही हैं।

क्या अज्ञान से बंध और अल्पज्ञान से मोक्ष होता है ?

अज्ञानाच्चेद्ध्रुवो बन्धो, ज्ञेया ऽनन्त्यान्न केवली
ज्ञानस्तोकाद्विमोक्षश्चेदज्ञानाद्बहुतोऽन्यथा ॥96॥

अन्वयार्थ : [चेत् अज्ञानात् ध्रुवो बंधो ज्ञेयानन्त्यात् केवली न] यदि अज्ञान से निश्चित बंध होता है तब ज्ञेय पदार्थ अनंत है उनका ज्ञान न हो सकने से कोई भी केवली नहीं हो सकता है [चेत् ज्ञानस्तोकात् विमोक्ष: बहुतो अज्ञानात्अन्यथा] यदि अल्पज्ञान से मोक्ष होता है तब उसी जीव के बहुत सा अज्ञान रहने से बंध भी होता रहेगा पुन: मोक्ष नहीं हो सकेगा।

अज्ञान, अल्पज्ञान से बंध-मोक्ष का उभय और अवक्तव्य नहीं बनता है

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥97॥

अन्वयार्थ : [स्याद्वादन्यायविद्विषां उभयैकात्म्यं न विरोधात्] स्याद्वाद न्याय के विद्वेषियों के यहाँ अज्ञान से बंध और अल्पज्ञान से मोक्ष इनका उभय एकात्म्य भी ठीक नहीं है। क्योंकि परस्पर में विरोध है [अवाच्यतैकांते अपि अवाच्यं इतिउक्ति: न युज्यते] यदि सर्वथा इन दोनों का अवाच्य ही कहा जाये, तो अज्ञान- ज्ञान से बंध-मोक्ष की व्यवस्था कह नहीं सकते अत: 'अवाच्य है' यह कथन भी वाच्य ही होने से आपका एकांत नहीं रहता है।

अज्ञान से बंध एवं अल्पज्ञान से मोक्ष की सुंदर व्यवस्था

अज्ञानान्मोहिनो बन्धो नाऽज्ञानाद्-वीतमोहत:
ज्ञानस्तोकाच्च मोक्ष: स्यादमोहान्मोहिनोऽन्यथा ॥98॥

अन्वयार्थ : [मोहिनो अज्ञानात् बंध: वीतमोहत: अज्ञानात् न] मोह सहित अज्ञान से बंध होता है एवं मोहरहित अज्ञान से बंध नहीं होता है [अमोहात् ज्ञानस्तोकात् च मोक्ष: स्यात् मोहिनो अन्यथा] मोह रहित अल्पज्ञान से मोक्ष होता है और मोह सहित अल्पज्ञान से बंध ही होता है।

कर्मबंध के अनुसार संसार विचित्र है

कामादिप्रभवश्चित्र: कर्मबन्धाऽनुरूपत:
तच्च कर्म स्वहेतुभ्यो जीवास्ते शुद्ध्यशुद्धित: ॥99॥
अन्वयार्थ : [कामादिप्रभव: चित्र: कर्मबंधानुरूपत:] यह काम, क्रोध आदि से होने वाला संसार विचित्ररूप है वह संसार अपने-अपने कर्म के अनुकूल ही होता है [तत् च कर्मस्वहेतुभ्य:] और वह कर्म भी अपने-अपने रागादि परिणाम के निमित्त से होता है (ते जीवा: शुद्ध्यशुद्धित:) जिनको कर्मबंध होता है, वे जीव भी शुद्धि और अशुद्धि के भेद से दो प्रकार के होते हैं।

शुद्धि-अशुद्धि शक्तियाँ कैसी हैं

शुद्ध्यशुद्धी पुन: शक्ती ते पाक्या ऽपाक्यशक्तिवत्
साद्यनादी तयोव्र्यक्ती स्वभावोऽतर्कगोचर:॥100॥
अन्वयार्थ : [पुन: ते शुद्ध्यशुद्धी शक्ती पाक्याऽपाक्यशक्तिवत्] पुन: जीव की वे शुद्धि-अशुद्धि शक्तियाँ पकने योग्य न पकने योग्य की शक्ति के समान हैं [तयो: व्यक्ती साद्यनादी] उन दोनों शक्तियों की व्यक्ति-प्रकटता सादि और अनादि है [स्वभाव: अतर्कगोचर:] क्योंकि स्वभाव तर्क के गोचर नहीं होता है।

प्रमाण का लक्षण और भेद

तत्त्वज्ञानं प्रमाणं ते, युगपत्सर्वभासनम्
क्रमभावि च यज्ज्ञानं, स्याद्वादनयसंस्कृतम् ॥101॥
अन्वयार्थ : [ते तत्त्वज्ञानं प्रमाणं युगपत् सर्वभासनं] हे भगवन्! आपके तत्त्वज्ञान को प्रमाण कहा है, उसमें युगपत् सर्व पदार्थों को प्रकाशित करने वाला ज्ञान केवलज्ञान है [क्रमभावि च यज्ज्ञानं स्याद्वादनयसंस्कृतं] और क्रम से उत्पन्न होने वाले जो ज्ञान हैं वे स्याद्वाद और नयों से संस्कृत हैं।

प्रमाणों का फल क्या है ?

उपेक्षा फलमाद्यस्य, शेषस्यादानहानधी:
पूर्वं वाऽज्ञाननाशो वा, सर्वस्याऽस्य स्वगोचरे ॥102॥
अन्वयार्थ : [आद्यस्य फलं उपेक्षा शेषस्य आदानहानधी:] आदि के केवल-ज्ञान का फल उपेक्षा है एवं शेष क्रमवर्ती ज्ञानों का फल ग्रहण योग्य को ग्रहण करना और छोड़ने योग्य को छोड़ना इस बुद्धि का होना है [सर्वस्य अस्य पूर्वा वा स्वगोचरे अज्ञाननाशो वा] अथवा सभी ज्ञानों का फल उपेक्षा है अथवा सभी ज्ञानों का फल अपने-अपने विषय में अज्ञान का अभाव होना ही है।

'स्यात्' शब्द का महत्व

वाक्येष्वनेकान्तद्योती गम्यं प्रति विशेषणम्
स्यान्निपातोऽर्थयोगित्वात्तव केवलिनामपि ॥103॥
अन्वयार्थ : [तव केवलिनां अपि स्यात् निपातो अर्थयोगित्वात्] हे भगवन्! आपके तथा श्रुतकेवलियों के भी मतानुसार 'स्यात्' यह निपात शब्द है जो कि अर्थ के साथ संबंधित है [वाक्येषु अनेकांतद्योती गम्यं प्रति विशेषणम्] यह वाक्यों में अनेकांत का द्योतक तथा गम्य रूप अर्थ के प्रति विशेषण माना गया है।

स्याद्वाद का स्वरूप

स्याद्वाद: सर्वथैकान्त-त्यागात् किमवृतचिद्विधि:
सप्तभंगनयापेक्षो हेयाऽऽदेयविशेषक: ॥104॥

अन्वयार्थ : [स्याद्वाद: सर्वथैकांतत्यागात् किम वृत्तचिद्विधि:] यह 'स्याद्वाद' पद सर्वथा एकांत का त्याग करने वाला है किम शब्द से चित् अव्यय लगकर जा शब्द 'कथंचित्' आदि निष्पन्न होते हैं, वे इसके पर्यायवाची हैं (सप्तभंग नयापेक्षो हेयादेयविशेषक:) यह स्याद्वाद सप्तभंग और नयों की अपेक्षा रखने वाला है तथा हेय और उपादेय का भेद करने वाला होता है।

स्याद्वाद और केवलज्ञान में क्या अंतर है ?

स्याद्वादकेवलज्ञाने सर्वतत्त्वप्रकाशने
भेद: साक्षादसाक्षाच्च, ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत् ॥105॥

अन्वयार्थ : [स्याद्वादकेवलज्ञाने सर्वतत्त्वप्रकाशने] स्याद्वाद और केवलज्ञान दोनों ही सभी तत्त्वों के प्रकाशक हैं [भेद: साक्षात् असाक्षात् च अन्यतमं हि अवस्तु भवेत्] इन दोनों के प्रकाशन में पदार्थों का साक्षात् करने और साक्षात् न करने का ही अंतर है इन दोनों ज्ञानों में से जो वस्तु किसी ज्ञान के द्वारा प्रकाशित नहीं होती है, वह अवस्तु कहलाती है।

नय और हेतु का लक्षण

सधर्मणैव साध्यस्य, साधर्म्यादविरोधत:
स्याद्वादप्रविभक्ताऽर्थ-विशेषव्यञ्जको नय: ॥106॥

अन्वयार्थ : [सधर्मणा एव साधर्म्यात् अविरोधत:] सपक्ष के साथ ही अपने साध्य के साधर्म्य से जो बिना किसी विरोध से [स्याद्वादप्रविभक्तार्थविशेष्यव्यञ्जक: नय:] श्रुत प्रमाणरूप स्याद्वाद के द्वारा जाने गये अर्थ विशेष का व्यंजक होता है, वह नय कहलाता है।

द्रव्य का स्वरूप

नयोपनयैकान्तानां, त्रिकालानां समुच्चय:
अविभ्राड्भावसम्बन्धो, द्रव्यमेकमनेकधा ॥107॥

अन्वयार्थ : [त्रिकालानां नयोपनयैकान्तानां समुच्चय:] त्रिकालवर्ती नय और उपनयों के एकांत विषयों का जो समुच्चय है [अविभ्राट् भावसंबंध: द्रव्यं एकं अनेकधा] वह कथंचित् तादात्म्य स्वभाव के संबंध को लिए हुए है उसी का नाम द्रव्य है वह द्रव्य एक है और अनेक भेदरूप है।

मिथ्यानय-सम्यकनय का लक्षण

मिथ्यासमूहो मिथ्या चेन्न मिथ्यैकान्ततास्ति न:
निरपेक्षा नया मिथ्या, सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत ॥108॥

अन्वयार्थ : [मिथ्या समूहो मिथ्या चेत् न: मिथ्यैकांतता न अस्ति] यदि कहो कि नयों और उपनयों के एकांतों का जो समूह है वह मिथ्याओं का समूह है वह मिथ्या ही है यदि ऐसा कहो तो ठीक नहीं है, क्योंकि हमारे यहाँ मिथ्या एकांतता नहीं है [ते निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा अर्थकृत् वस्तु] हे भगवन्! आपके मत में जो नय परस्पर में निरपेक्ष हैं वे मिथ्या हैं एवं जो नय परस्पर में सापेक्ष हैं वे सम्यक हैं उनके विषय में अर्थक्रियाकारी हैं इसलिए उनका समूह ही वस्तु है।

वस्तु को विधि आदि के द्वारा कहते है

नियम्यतेऽर्थो वाक्येन विधिना वारणेन वा
तथाऽन्यथा च सोऽवश्य-मविशेष्यत्वमन्यथा ॥109॥

अन्वयार्थ : [विधिना वारणेन वा वाक्येन अर्थ: नियम्यते] विधि वाक्य अथवा निषेध वाक्य के द्वारा पदार्थ का नियम किया जाता है [स: तथा अन्यथा च अवश्यं अन्यथा अविशेष्यं] जो अर्थ जिस वाक्य से निश्चित है वह अन्यथारूप होने से विशेष्य न होकर अविशेष्य ही है।

उभयात्मक वस्तु को एक रूप कहना मिथ्या है

तदतद्वस्तुवागेषा, तदेवेत्यनुशासती
न सत्या स्यान्मृषावाक्यै:, कथं तत्त्वार्थदेशना ॥110॥
अन्वयार्थ : [तत् अतत् वस्तु तत् एव इति अनुशासती एषा वाक् सत्या न स्यात्] प्रत्येक वस्तु तत् अतत् रूप हैं किन्तु वस्तु 'तत् रूप ही है' इस प्रकार से कहने वाले वचन सत्य नहीं हैं (मृषावाक्यै: तत्त्वार्थदेशना कथं) अत: मृषा वचनों से तत्त्वार्थ का उपदेश कैसे हो सकता है।

वचन का वास्तविक स्वभाव क्या है ?

वाक्स्वभावोऽन्यवागर्थ-प्रतिषेधनिरंकुश:
आह च स्वार्थसामान्यं, तादृग् वाच्यं खपुष्पवत् ॥111॥
अन्वयार्थ : [वाक् स्वभाव: अन्यवागर्थ प्रतिषेधनिरंकुश: स्वार्थसामान्यं चआह] वचन का यह स्वभाव है कि अन्य वचन के अर्थ के प्रतिषेध करने मेंनिरंकुश और अपने अर्थ सामान्य को कहता है [तादृक् वाच्यं खपुष्पवत्] इसवचन के स्वभाव से भिन्न जो वचन केवल निषेध मुख अर्थ का प्रतिपादन करते हैं वे आकाशपुष्पवत् असत् हैं।

स्यात्कार ही अभिप्रेत को प्राप्त कराने वाला है

सामान्यवाग् विशेषे चेन्न शब्दार्थो मृषा हि सा
अभिप्रेतविशेषाप्ते: स्यात्कार: सत्यलाञ्छन: ॥112॥
अन्वयार्थ : [सामान्यवाग् विशेषे चेत् शब्दार्था मृषा हि सा] यदि कहा जाये कि सामान्य वाक्य पर के अभाववरूप विशेष में ही रहता सो ठीक नहीं है। क्योंकि यह वाक्य विशेष शब्द के अर्थ को नहीं कहता है अत: यह वाक्य मिथ्या ही हैं [अभिप्रेतविशेषाप्ते: स्यात्कार: सत्यलाञ्छन:] अभिप्राय में स्थित अभिप्रेत विशेष की प्राप्ति कराने में सच्चा साधनभूत सत्य चिन्ह वाला यह 'स्यात्कार' शब्द है।

स्याद्वाद की सम्यक् व्यवस्था

विधेयमीप्सितार्थाङ्गं प्रतिषेध्याऽविरोधि यत्
तथैवाऽऽदेय-हेयत्व-मिति स्याद्वादसंस्थिति: ॥113॥
अन्वयार्थ : [यत् विधेयं ईप्सितार्थाङ्गं प्रतिषेध्याऽविरोधि] जो विधि वाक्य के द्वारा कहा गया विधेय है वह इच्छित अर्थ का कारण है और अपने प्रतिषेध्यनास्ति के साथ अविनाभावी होने से अविरोधी है [तथैव आदेयहेयत्वं इति स्याद्वादसंस्थिति:] और उसी प्रकार वस्तु का उपादेय एवं हेयपना सिद्ध है अन्यथा नहीं। इस प्रकार से स्याद्वाद की सम्यक् प्रकार से व्यवस्था हो जाती है।

आप्त मीमांसा करने का उद्देश्य

इतीयमाप्तमीमांसा विहिता हितमिच्छताम्
सम्यग्मिथ्योपदेशार्थविशेषप्रतिपत्तये ॥114॥
अन्वयार्थ : [इति इयं आप्तमीमांसा हितं इच्छतां] इस प्रकार से यह आप्तमीमांसा हित के चाहने वालों को [सम्यक्-मिथ्योपदेशार्थविशेषप्रतिपत्तये विहिता] सम्यक् उपदेश और मिथ्या उपदेश के अर्थ विशेष का ज्ञान कराने के लिए की गई है।